कैसे हुई पृथ्वी की उत्पत्ति?

डॉ. विजय कुमार उपाध्याय

पृथ्वी की उत्पत्ति के सम्बंध में समय-समय पर संसार के अनेक वैज्ञानिकों ने अपने मत व्यक्त किए हैं। सन 1755 में जर्मनी के प्रसिद्ध वैज्ञानिक इमैनुएल कांट की एक पुस्तक प्रकाशित हुई थी जिसका नाम था 'थियोरी ऑफ हेवन्स' जिसमें उन्होंने पृथ्वी की उत्पत्ति को लेकर एक परिकल्पना प्रस्तुत की थी। इस परिकल्पना के अनुसार प्रारम्भ में ब्रह्माण्ड के एक भाग में गैस तथा धूल कणों से निर्मित विशाल आकार का एक बादल मौजूद था। शुरू-शुरू में यह बादल बहुत अधिक ठंडा था तथा चाक की भांति अनवरत घूम रहा था। कांट द्वारा प्रतिपादित इस परिकल्पना से आधुनिक काल के वैज्ञानिक भी सहमत हैं। आधुनिक शक्तिशाली दूरबीनों द्वारा हाल में किए गए कुछ अध्ययनों से पता चला है कि ब्रह्माण्ड में गैस तथा धूल से निर्मित एवं चाक की भांति घूमते हुए विशाल बादल सचमुच ही मौजूद हैं, जैसी कि कांट ने कल्पना की थी।

फ्रांसीसी गणितज्ञ पियरे साइमन लैप्लेस ने सन 1796 में कांट की परिकल्पना में थोड़ा सुधार किया। लैप्लेस ने बताया कि ब्रह्माण्ड में स्थित गैस तथा धूल-कणों से निर्मित बादल ब्रह्माण्डीय बल (कॉस्मिक फोर्स) के कारण धीरे-धीरे चक्के की भांति घूमने लगे। साथ ही साथ यह बादल अपने कणों के आपसी गुरुत्वाकर्षण बल के कारण धीरे-धीरे संकुचित होने लगा। इस संकुचन के दौरान समय-समय पर इस विशाल बादल के अंश ग्रहों के रूप में बदलकर उस विशाल बादल के चक्कर लगाने लगे। इन्हीं ग्रहों में से एक है हमारी पृथ्वी।

छिटके हुए टुकड़ों से विभिन्न ग्रहों के निर्माण के बाद जो केन्द्रीय भाग बच गया, वही सूर्य के रूप में परिवर्तित हो गया। परन्तु लैप्लेस की यह परिकल्पना आधुनिक खगोल विज्ञान की कसौटी पर खरी नहीं उतरती। आधुनिक खगोल विज्ञान के अनुसार गैस तथा धूल का घूमता तथा संकुचित होता हुआ बादल धीरे-धीरे अधिक तेज़ी से घूमना प्रारम्भ करता जाएगा। इस प्रकार आज घूमने की गति सूर्य की वर्तमान वास्तविक गति से काफी अधिक होनी चाहिए थी।

लैप्लेस की परिकल्पना में कुछ त्रुटियों के पता चलने के बाद कई अन्य वैज्ञानिकों ने पृथ्वी तथा सौर परिवार के अन्य ग्रहों की उत्पत्ति सम्बंधी अपने-अपने विचार नए ढंग से प्रस्तुत किए।

सन 1900 में टी. सी. चैम्बरलिन तथा एफ. आर. मोल्टन ने बताया कि सूर्य के इर्द-गिर्द घूमने वाले छोटे-छोटे टुकड़ों के आपस में सटकर मिलने से पृथ्वी एवं अन्य ग्रह बने। परन्तु प्रश्न यह उठा कि ये छोटे-छोटे टुकड़े आए कहां से? यदि ये टुकड़े सौर परिवार के बाहर से आए तो उन सब की सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाने की दिशा एक नहीं हो सकती। चैम्बरलिन तथा मोल्टन ने इस प्रश्न के उत्तर में बताया कि एक दूसरा तारा सूर्य की बगल से गुजरा जिसके गुरुत्व बल के कारण सूर्य का कुछ अंश टूटकर अलग हो गया जो कुछ समय के बाद ठंडा होकर छोटे टुकड़ों में जम गया। ये टुकड़े सूर्य के चारों ओर उसी दिशा में चक्कर काटने लगे जिस दिशा में सूर्य की बगल से दूसरा तारा गुज़रा था। छोटे-छोटे टुकड़े धीरे-धीरे समूहों में जमा होने लगे। समूह में जुटे इस तरह के दो या तीन टुकड़े जब बहुत निकट आते तो उनका सामूहिक गुरुत्व बल अन्य टुकड़ों को आकर्षित कर लेता था। इस प्रकार टुकड़ों के क्रमिक योग से ग्रहों का निर्माण हुआ।

कुछ ग्रहों का आकार इस कारण बड़ा हुआ कि उन्होंने बहुत बड़े क्षेत्र से पदार्थों को अपने में समेट लिया। चूंकि सूर्य से 35-40 खगोलीय इकाइयों (एक खगोलीय इकाई = पृथ्वी और सूर्य की औसत दूरी जो लगभग 15 करोड़ किलोमीटर है) से अधिक दूरी पर टुकड़े नहीं के बराबर थे अतः इस दूरी के बाद ग्रह नहीं बने।

परंतु आधुनिक वैज्ञानिकों के मतानुसार यदि सूर्य जैसे गर्म पिंड से किसी अन्य तारे के आकर्षण बल के कारण

कुछ पदार्थ खिंचकर अलग हो जाता है तो वह अन्तर्तारकीय अंतरिक्ष में बिखर जाएगा न कि घनीभूत होकर ग्रहों के रूप में परिवर्तित होगा। यदि मान भी लिया जाए कि सूर्य से पृथक होने वाला पदार्थ किसी अज्ञात विधि द्वारा संकुचित एवं घनीभूत होकर ग्रहों में परिवर्तित होता है तो सूर्य के चारों और इनके परिक्रमा पथ बहुत ही अधिक अनियमित एवं अव्यवस्थित होंगे न कि सौर परिवार के सदस्यों के परिक्रमा पथों के समान पूर्णतः नियंत्रित एवं व्यवस्थित।

पृथ्वी की उत्पत्ति सम्बंधी एक अन्य सिद्धान्त में बताया गया है कि प्रारम्भ में सूर्य का एक सहचर तारा था। यह सहचर तारा सूर्य से कुछ दूरी पर स्थित था। दूर से आता हुआ एक अन्य तारा सूर्य के सहचर तारे के साथ टकरा गया जिसके कारण सहचर तारा चूर-चूर हो गया तथा इसका मलबा कई ग्रहों के रूप में संगठित होकर सूर्य का चक्कर लगाने लगा। परन्तु इस परिकल्पना में भी एक त्रुटि मालूम पड़ती है। ब्रह्माण्ड में तारे एक-दूसरे से इतने दूर-दूर स्थित हैं कि उपरोक्त प्रकार के टकराव की संभावना नगण्य है। यदि थोड़ी देर के लिए मान भी लिया जाए कि इस प्रकार का टकराव हुआ होगा तो फिर यह असंभव मालूम पड़ता है कि सहचर तारे के टूटने से उत्पन्न अति तप्त एवं वाष्पशील पदार्थ विभिन्न ग्रहों के रूप में संगठित हो गया। इस परिकल्पना में एक और भी त्रुटि है। इस परिकल्पना से इस बात की व्याख्या नहीं हो पाती कि विभिन्न ग्रहों के उपग्रहों का निर्माण कैसे हुआ।

रूसी वैज्ञानिक औटो स्मिट ने सन 1944 में उल्का सम्बंधी परिकल्पना दी। इसी वर्ष सी. एफ. फॉन वाइसैकर तथा सन 1951 में जी. पी. कूपर ने भी स्मिट से मिलती जुलती ग्रहाणु परिकल्पनाएं प्रस्तुत की। उल्का या ग्रहाणु परिकल्पना (प्लैनेटसिमल हाइपोथेसिस) के अनुसार यह माना गया कि सूर्य एवं ग्रहों का निर्माण विभिन्न स्त्रोतों से प्राप्त पदार्थों से हुआ। सूर्य के विकास के क्रम में एक समय ऐसा आया कि इसके गुरुत्व क्षेत्र में उपस्थित निहारिका से गैस एवं धूल के ठंडे बादल के कुछ ग्रहाणु सूर्य के शक्तिशाली गुरुत्व क्षेत्र में पुनर्गठित होने लगे। इस क्रम में बहुत से कण तो सूर्य में समाविष्ट हो गए तथा कुछ कण आपस में जुटकर बड़े टुकड़ों का निर्माण करने लगे। इन बड़े टुकड़ों के गुरुत्व क्षेत्र में छोटे कण खिंचकर आने लगे। इस प्रकार क्रमशः ग्रहों एवं उपग्रहों का निर्माण हुआ।

उल्का या ग्रहाणु परिकल्पना ग्रहों के आकार, कक्षा एवं घूर्णन सम्बंधी सभी गुणों की संतोषप्रद व्याख्या करने में सक्षम है। इतना ही नहीं, इस परिकल्पना द्वारा ग्रहों एवं उपग्रहों के वास्तविक स्थान, द्रव्यमान, घनत्व एवं उनके कोणीय आवेग की भी व्याख्या हो सकती है। परन्तु इस परिकल्पना द्वारा ग्रहों के अन्दर की सम केन्द्रीय परतों के निर्माण की व्याख्या नहीं हो पाती।

आधुनिक वैज्ञानिक एक बार पुनः कांट तथा लैप्लेस द्वारा प्रस्तुत परिकल्पना का समर्थन करने लगे हैं। परन्तु इस परिकल्पना का समर्थन उन्होंने कुछ संशोधनों के साथ किया है। इस परिकल्पना को नेबुलर परिकल्पना कहा जाता है। इसी परिकल्पना को आदि-ग्रह (प्रोटो प्लैनेट) परिकल्पना भी कहा जाता है। आदि-ग्रह परिकल्पना में यह मान लिया गया है कि जहां आज हमारा सौर परिवार स्थित है, वहां पहले एक विशाल बादल फैला हुआ था। यह बादल ब्रह्माण्ड मिश्रण से निर्मित था। इस ब्रह्माण्ड मिश्रण के एक हज़ार अणुओं में से 900 अणु हाइड्रोजन के, 97 हीलियम के तथा शेष तीन अणु कुछ भारी तत्वों के मौजूद थे। इन भारी तत्वों में शामिल थे कार्बन, ऑक्सीजन, लोहा तथा कुछ अन्य तत्व। ब्रह्माण्ड मिश्रण से निर्मित यह बादल इतना विरल था कि उसका घनत्व सिर्फ 10^{-22} ग्राम प्रति घन से.मी. था। धीरे-धीरे यह विशाल बादल घूमने लगा। घूर्णन का विकास सामान्य ढंग से नहीं हुआ। हाल ही में खगोलविदों द्वारा रेडियो-दूरबीनों की सहायता से उपरोक्त किस्म के बादलों के बारे में किए गए अध्ययनों से पता चला है कि ऐसे बादल में सर्व प्रथम खलबली (टर्बुलेंस) पैदा हुई होगी। इस खलबली के कारण बादल में सर्वप्रथम छोटी-छोटी भंवरें उत्पन्न हुई होंगी। ये भंवरें एक-दूसरे से मिलकर धीरे-धीरे अधिक से अधिक बड़ी होती गई होंगी। अंत में संपूर्ण बादल पिंड घूमने लगा होगा। इस बादल के केन्द्र में एक काफी बड़ी भंवर बन गई होगी जिसने बादल के अन्य भागों की अपेक्षा तेजी से संकुचित होकर अन्त में आदि-सूर्य (प्रोटो

सन) का रूप लिया होगा।

इस आदि-सूर्य के चारों ओर स्थित बादल की ठंडी गहराइयों में कुछ तत्व आपस में संयुक्त होकर चंद यौगिकों (जैसे जल, अमोनिया इत्यादि) का निर्माण किए होंगे। इसी प्रकार धीरे-धीरे ठोस रवों (उदाहरणार्थ लौह सिलिकेट तथा पाषाणी सिलिकेट) का निर्माण प्रारम्भ हुआ होगा। फिर धीरे-धीरे इस घूमते हुए बादल में गुरुत्वाकर्षण तथा केन्द्रापसारी बलों के कारण यह बादल एक विशाल तश्तरी की आकृति में परिवर्तित हो गया होगा। इस विशाल घूमती तश्तरी में स्थानीय भंवरों का निर्माण हुआ होगा। इनमें से कुछ भंवरें आपस में टकराकर टूट गई होंगी। एक अर्थ में प्रत्येक भंवर अपने अस्तित्व के लिए कठिन संघर्ष कर रही थी। ऐसे विनाशकारी बलों की उपस्थिति में किसी भी भंवर को अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए यह आवश्यक था कि वह अपने दायरे में पदार्थों की एक निश्चित अल्पतम मात्रा को समेट ले जिससे कि उसका अपना एक गुरुत्व केन्द्र बन जाए। इस प्रकार अस्तित्व के लिए संघर्ष के दौरान कुछ भंवरें अपना पदार्थ खोती चली गई जब कि कुछ अन्य भंवरें अपने दायरे में पदार्थ समेटती चली गई। अन्त में आदि-सूर्य के चारों ओर कुछ भंवरें घूमती हुई छोटी-छोटी तश्तरियों में बदल गई। ये तश्तरियां विभिन्न ग्रहों के आदि-रूप थीं। ये आदि-ग्रह इतने बड़े थे कि अपने गुरुत्व बल के कारण अपने आप में बंधे रह सकते थे। इस प्रकार के आदि-ग्रहों में से प्रत्येक ने सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाने के क्रम में मूल बादल के छोटे-छोटे टुकड़ों को अपने गुरुत्वाकर्षण बल के कारण समेटना शुरू किया और आदि-ग्रहों का आकार धीरे-धीरे बढ़ता चला गया।

ग्रहों का निर्माण करनेवाली बड़ी-बड़ी भंवरों के बीच-बीच में छोटी-छोटी भंवरें बन गई होंगी। ये छोटी भंवरें ही अन्त में उपग्रहों के रूप में सामने आईं। जितनी बड़ी ग्रह वाली भंवर रही होगी उसके चारों ओर छोटी भंवरों की संख्या उतनी ही अधिक रही होगी। यही कारण है कि बड़े ग्रहों जैसे बृहस्पति के 16 तथा शनि के 34 उपग्रह हैं जबकि छोटे ग्रहों के कम उपग्रह हैं या फिर उनके कोई उपग्रह हैं ही नहीं।

इसी बीच आदि-सूर्य भी संकुचित होते-होते इतना अधिक सघन एवं गर्म हो गया कि इसमें ताप नाभिकीय संलयन (थर्मोन्यूक्लियर फ्यूज़न) की क्रिया शुरू हो गई। इस क्रिया के फलस्वरूप वह विशाल मात्रा में ऊर्जा का उत्सर्जन करने लगा। ताप नाभिकीय संलयन की क्रिया शुरू होने के बाद सूर्य पहले धुंधला लाल दिखने लगा। फिर तापमान बढ़ने के साथ-साथ वह सुनहरा पीला दिखने लगा। आदि-सूर्य का व्यास सबसे बड़े आदि-ग्रह के व्यास का लगभग सौ गुना था। आदि-ग्रहों की तुलना में आदि-सूर्य के इतने विशाल आकार के कारण ही सूर्य एक तारा बन गया। इसके शक्तिशाली गुरुत्वाकर्षण बल के कारण हल्का तत्व हाइड्रोजन इसके केन्द्र की ओर खिंचकर जमा हो गया। आदि-सूर्य के क्रोड में बृहत् परिमाण में हाइड्रोजन के संचय के कारण ही ताप नाभिकीय क्रिया शुरू हुई। आदि-ग्रहों में आदि-सूर्य के समतुल्य गुरुत्वाकर्षण बल नहीं था। इस कारण न तो हाइड्रोजन क्रोड में जमा हुई और न ताप नाभिकीय क्रिया शुरू हो पाई।

आदि-सूर्य के चारों ओर निर्मित विभिन्न आदि-ग्रहों में एक थी हमारी पृथ्वी जो बर्फीले कणों तथा ठोस टुकड़ों के घूमते हुए बादल के रूप में उत्पन्न हुई थी। धीरे-धीरे इस बादल के कण एक बड़े ठोस गोले के रूप में संगठित हो गए। संगठित होने में जल तथा बर्फ कणों के आकर्षण बल ने योगदान दिया। सूर्य के चारों ओर घूमने के दौरान पृथ्वी अपने आकर्षण बल से सूर्य के चारों ओर बिखरे हुए कणों को समेटती गई तथा इस प्रकार अपना आकार बढ़ाती गई।

धूल कणों से निर्मित पृथ्वी रूपी गोले में कुछ रेडियो धर्मी तत्वों के कण भी शामिल थे जिनसे ताप का उत्सर्जन होने लगा। लाखों वर्षों तक पृथ्वी के भीतर इस प्रकार उत्पन्न ताप के संचय से पृथ्वी का तापमान लगातार बढ़ता गया। अंत में तापमान इतना ऊंचा हो गया कि इसमें उपस्थित पदार्थ ठोस से द्रव में परिवर्तित हो गया। रूसी वैज्ञानिक ल्यूबीमोवा ने सन 1969 में पृथ्वी के आन्तरिक भाग के तप्तीकरण की गणना की। इसके अनुसार पृथ्वी के आंतरिक भाग में कई सौ किलोमीटर की गहराई पर तापमान एक समय पर लोहे के गलनांक तक पहुंच गया था। इस

अवस्था में पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण बल के कारण इसमें उपस्थित विभिन्न पदार्थ घनत्व के अनुसार पृथ्वी के भीतर विभिन्न परतों में जमा होने लगे। लोहा तथा निकल जैसे भारी तत्व नीचे की ओर उतरकर केन्द्रीय भाग में जमा होने लगे जिससे क्रोड का निर्माण हुआ। कुछ हल्के तत्व तथा उनके यौगिक क्रोड के बाहर वाली परत में जमा हुए जिससे मैंटल का निर्माण हुआ। सबसे हल्के तत्व तथा उनके यौगिक पृथ्वी की सबसे बाहरी परत में जमा हो गए जिससे भूपर्पटी का निर्माण हुआ।

धीरे-धीरे पृथ्वी अपने ताप का विकिरण कर ठंडी होने लगी तथा तापमान अधिक गिरने से यह द्रव से ठोस में परिवर्तित होने लगी। सर्वप्रथम इसकी सबसे बाहरी परत अर्थात भूपर्पटी द्रव से ठोस में परिवर्तित हुई। इसके उपरांत भीतरी परतें भी धीरे-धीरे ठोस बनने लगीं। पृथ्वी के भीतरी भाग का कुछ अंश अभी भी द्रव अवस्था में है।

जब पृथ्वी द्रव अवस्था से ठोस अवस्था में परिवर्तित होने लगी तो सिकुड़ने के कारण इसकी सतह जगह-जगह चटख गई जिससे पृथ्वी में बड़ी-बड़ी दरारें पड़ गई। समय-समय पर इन दरारों से होकर पृथ्वी के भीतरी भाग से द्रव पदार्थ पृथ्वी की सतह पर आ जाता है। यही कारण है कि आज हमें पृथ्वी की बाहरी परत अर्थात भूपर्पटी में भी लोहा, निकल, चांदी, सोना, तथा प्लेटिनम जैसे भारी तत्व मिलते हैं। परन्तु इन भारी तत्वों की अधिकांश मात्रा अभी भी पृथ्वी के केन्द्रीय भाग अर्थात् क्रोड में संचित है। ***(स्रोत फीचर्स)***